❑ डॉ0 नेमीचन्द जैन

अहिंसा का अर्थशास्त्र

अहिंसा का अर्थशास्त्र तीन प्रमुख प्रवृत्तियों पर अवस्थित है, ये हैं- स्वावलम्बन, अपरिग्रह, विकेन्द्रीकरण। उसका मानना है कि जहां पराधीनता, परिग्रह और केन्द्रीकरण है, वहां दमन, दोहन और हिंसा अपरिहार्यत: हैं। इस संदर्भ में गुजराती भाषा में एक पुस्तक प्रकाशित हुई है- 'सुंदर दुनिया माटे सुंदर संघर्ष'* (1993/ श्रीमती नंदिनी जोशी)। इस किताब के अध्याय 34 और 35 अहिंसा-के-अर्थतन्त्र को बड़ी स्पष्टता से प्रतिपादित/परिभाषित करते हैं। इन अध्यायों में प्रो0 काओरू यामागुची जापान के ग्राम-अर्थतन्त्र (म्युराटोपिअन अर्थतन्त्र) की चर्चा की गयी है और कहा गया है कि यही एक ऐसा अर्थतन्त्र है जो हमारी आगामी समाज रचना का सबल आधार बन सकता है। हो सकता है कुछ लोगों को यह रूढ़ और परम्परित दीख पड़े, किन्तु अब जब तक मनुष्य इस ओर वापस नहीं होगा, उसके बीच के फासले बढ़ेंगे और परिग्रह तथा पूंजी का अजगर उसे आमूलचूल निगल जाएगा। जो भारत हिंसा और परिग्रह के ज़हर से अब तक बचा हुआ था, आज वही उदारीकरण की फांसी के फंदे में लटका जीवन-मरण का संघर्ष कर रहा है। दुर्भाग्य से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नाम पर देश का जो बचाखुचा ग्रामतन्त्र था वह भी सर्वनाश की ओर कूच कर गया है।

ऐसे भयावह क्षणों में यदि हमने हक़ और हकीक़त की ओर से अपनी आंखें मूंदीं तो वह आदमी जो पूंजी का मालिक था, एक संपूर्ण गुलाम बन जाएगा (बन चुका है)। आज जगत्वर्ती ग्राम (ग्लोबल विलेज) की बात तो की जाती है, किन्तु इस बात के पीछे कपट का एक भ्रम-जाल बिछा हुआ है। यहां 'ग्लोबल विलेज' का मतलब पूरी दुनिया को एक ग्राम (विलेज) के रूप में विकसित करने का है यानी सूचना-युग (इन्फर्मेशन एज) की तीव्रता का अड्डा बनाना है अर्थात् यह कहना है कि दुनिया इतनी सूचना-पराधीन हो पड़ेगी कि जैसे कोई बात गांव में जंगल की आग की तरह फैलती-व्यापती है, वैसे दुनिया में वह व्याप जाएगी। गांव सूचनाओं में कराहने लगेगा। वह दलाल स्ट्रीट बन जाएगा। यह कल्पना या ख्वाब नहीं बल्कि एक भयानक दु:स्वप्न है, जो मनुष्य के अस्तित्व और उसकी अस्मिता के लिए प्रलयंकारी सिद्ध होगा। इससे दुनिया छोटी नहीं होगी और न ही लोग एक पड़ोसी की तरह एक-दूसरे से प्यार, और एक-दूसरे पर भरोसा करने लगेंगे, बल्कि 'पास' कहला कर भी वे एक-दूसरे से कोसों 'दूर' पड़ जाएंगे।

मानिये, हिंसा, सत्ता और पूंजी पर खड़ा यह अर्थतन्त्र मनुष्य और मनुष्य तथा मनुष्य एवं प्रकृति के बीच ऐसे फासले खड़े कर रहा है, जिन्हें कभी भी पाटना संभव नहीं होगा। आज मनुष्य ने प्रकृति को पूंजी कमाने का साधन/माध्यम बना लिया है, अत: वह उसके अधिकतम शोषण में लग गया है। अधिकतम के मकड़जाल में फंसा आदमी अब सब ओर से विनाश के खौफ़नाक शिकंजे का दबाव-कसाव महसूस करने लगा है। उसके हाथ-पांव एक ऐसे आर्थिक जाल में फंस गये हैं, जिससे उभरना असंभव-जैसा हो गया है।

ऐसे में 'ग्लोबल विलेज' का मतलब यदि हम वही लेते हैं जो ऊपर दिया गया है तो मनुष्य को एक अभिशप्त भविष्य की ओर ले जाते हैं और यदि उसका अर्थ हम यह करते हैं कि जो कुछ जगत् में है वह उसके हर गांव में हो तो हम जगत् को एक ऐसे नन्दन वन के रूप में परिकल्पित करते हैं, जिसका शिल्पन गांधी ने कभी किया था और जो कभी भारतीय अर्थतन्त्र की रीढ़ था। **अहिंसा के अर्थतन्त्र का प्रथम और सर्वोपरि लक्ष्य है एक अहिंसक अपरिग्रहमूलक ग्राम इकाई को आविष्कृत/आविर्भूत करना।**

हमें यह भी ध्यान में रखना होगा कि भारत सिर्फ अर्थतन्त्र ही नहीं है, बल्कि वह संस्कृति, सद्विवेक, अध्यात्म एवं धर्म का समवेत सुविकसित तीर्थधाम भी है। भारत एक ऐसा विश्व-स्थल है, जिसने अतीत में कई आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक, आध्यात्मिक एवं धार्मिक सफल प्रयोग किये हैं और विश्व-मानव की एक स्वस्थ छवि प्रदान की है। उसके अर्थतन्त्र की सबसे प्राणवान्, बल एवं ऊर्जावान् इकाई थी ग्राम, वह ग्राम जिसे आज अनजाने में पश्चिम के निरर्थक आवेश में तहस-नहस किया जा रहा है। आज हम एक ऐसे खतरनाक क्षण से गुज़र रहे हैं, जहां अर्थ और राजनीति के दबाव से हमारे ग्रामतन्त्र का चेहरा निस्तेज और फीकाफस्स हुआ जा रहा है- हम बदलें, किन्तु इस बात का ध्यान रखते हुए कि हमारी मौलिकताएं बरकरार रहें और हमारा ग्राम परतन्त्र/परमुखापेक्षी न बने। यह सब-सारा तभी संभव है जब राजनीति, समाज-व्यवस्था, न्याय-प्रबंध, शिक्षा एवं चिकित्सा आदि तदनुरूप परिवर्तन लाया जाए और समाविष्ट विकृतियों को दूर किया जाए।

श्रीमती नंदिनी जोशी लिखती हैं कि 'आज से लगभग दो सदी पूर्व हमारे देश के ग्राम इतने सक्षम/स्वावलम्बी/समृद्ध थे कि प्रत्येक ग्राम स्वयं पूरे जगत् का प्रतिरूप था। मैंने अपने पिताजी से सुना था कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयुक्त राष्ट्र संघ में जिन प्रश्नों की चर्चा होती है, उन तमाम प्रश्नों पर हमारे एक छोटे गांव के चबूतरे पर भी चर्चा होती है। मात्र इन प्रश्नों का फलक छोटा है अन्यथा उनका स्वरूप तो एक-जैसा ही है। इसका मतलब है कि अहिंसा का अर्थतन्त्र प्रत्येक भारतीय ग्राम को एक ऐसे 'स्व-क्षम जगत्वर्ती ग्राम' के रूप में विकसित देखना चाहता है जा लघु संयुक्त राष्ट्र संघ (मिनी यूनो) हो। ऐसे ग्राम पूंजी को ऋण करके ही उभर सकते हैं। **जब तक हम विनिमय-पद्धति (बार्टर-सिस्टम) को नहीं लौटायेंगे, जीवन की गुणवत्ता (क्वालिटी) को लौटाना संभव नहीं होगा। जब वस्तुओं का विनिमय होगा, तब उनकी गुणवत्ता के साथ कोई बदसलूकी नहीं कर पायेगा। मूल वस्तु के साथ मूल वस्तु का विनिमय होगा।** ऐसे में वे सारे व्यय और विकार आपोआप घट या हट जाएंगे जो वस्तु की मौलिकता को अवमिश्रित करते हैं और उसके साथ अन्धी व्यापारिकता को जोड़ते हैं। गांधीजी ने ऐसे ग्रामतन्त्र के अन्तर्गत विकसित ग्राम को 'स्वर्ग-का-बगीचा' कहा है।

हमारा यह मानना है कि 'भारतीय ग्राम तक विकास-की-झिरी शहरों से या दुनिया के विकसित मुल्कों से पहुंचेगी'। यह गलत है। ऐसा करने या कहने से हमारी बुनियाद कमजोर होगी। सब जानते हैं कि जब तक समाज में समानता और अमन आविर्भूत नहीं होंगे, आतंक और हिंसा बने रहेंगे, तब तक विकास के रुद्ध स्रोत खुल नहीं पायेंगे। हम दो क़दम आगे बढ़ेंगे और चार कदम पीछे आयेंगे। यह गणित अवनति और विनाश का गणित है, इसे हम उत्थान और विकास का गणित नहीं कह सकते।

जब तक हम छोटे पैमाने पर, बैंकों-के-जाल से मुक्त हो कर - उत्पादन की प्रक्रिया में नहीं आयेंगे, यह असंभव ही होगा कि हम मनुष्य और मनुष्य के मध्यवर्ती फासलों को घटा पायें। जब तक नफे की जगह समाज/जनहित के लिए उत्पादन की शुरुआत नहीं होगी, नयी समाज-रचना का शिलान्यास संभव नहीं होगा।

यह मान कर चलना कि अर्थतन्त्र के बीज विकसित देशों से आयेंगे और उनकी स्वस्थ फसलें भारतीय ग्रामों में पनपेंगी, बुनियादी तौर पर ही ग़लत है। हमारे गांवों में विकास की अनगिनत उर्वर संभावनाएं (पोटेंशियल्य) हैं, हम असल में उनका क़द छोटा करके उनके बारे में सोचने लगे हैं और उस 'अनलिखे ज्ञान' (ग्राम-विज्ञान) को भूल रहे हैं, जो मैदान के जल को सिंचाई के लिए बगैर किसी यन्त्र की मदद के पहाड़ों पर चढ़ा ले जाता रहा है। मध्यप्रदेश के निमाड़ अंचल में इस तरह की सिंचाई-व्यवस्था को आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है।

आज का उद्योगवर्ती अर्थतन्त्र प्रकृति को कमाई का साधन मानकर चलता है, उसके लिए पेड़-पौधे, नदी-झरने, पर्वत-पहाड़, वराह-हाथी, मछली-मुर्गी, केंचुए-खरगोश सब कमाई के जरिए हैं, इसीलिए वह इन सबका क्रूरतम दोहन करता है और उनके प्रति जो भी क्रूरतापूर्ण और असम्मानजनक संभव है, उसे करने से नहीं चूकता। यही कारण है कि आज के अर्थतन्त्र ने जीवन-के-प्रति-सम्मान की भावना को नष्ट कर दिया है और वह सिर्फ पूंजी के पीछे पिशाच की भांति पड़ गया है। अहिंसा-का-अर्थतन्त्र हिंसा को छोटा/व्यर्थ करने का अर्थतन्त्र है। वह दुनिया के कोने-कोने में हिंसा और क्रूरता के क़द को छोटा करना चाहता है और चाहता है कि सर्वत्र समता की संभावनाएं फले-फूलें। हमारी विनम्र राय में **जब दुनिया का हर गांव स्व-क्षम जगत्वर्ती गांव बनेगा तभी विश्व-शान्ति की कल्पना साकार होगी अन्यथा वह यावच्चन्द्रदिवाकरौ स्वप्न बनी रहेगी।**

जापान एक ऐसा देश है, जिसने औद्योगिक क्रान्ति का अधिकतम दोहन करते हुए भी प्रो0 काओरू यामागुची की 'सक्षम जगत्वर्ती ग्राम' (सस्टेनेबल ग्लेबल विलेज) की अवधारणा को जन्म दिया है। प्रो0 यामागुची ने इस ग्राम-अर्थतन्त्र को 'म्युराटोपिअन अर्थतन्त्र' का नाम दिया है। 'म्युरा' जापानी का शब्द है, जिसका अर्थ है 'ग्राम'- एक ऐसा ग्राम है, जहां के लोग आत्मनिर्भर हों, परम्परित रीति-रिवाज़ों में आस्था रखते हों, प्रकृति के प्रति जिनके मन में सम्मान की भावना हो और जो अवकाश में एक-दूसरे की मदद के लिए कमर कसे हों। जब हम 'म्युरा' शब्द का विखण्डन करते हैं, तब हमें 'म्युराटोपिअन' अर्थतन्त्र की खूबियों का और अधिक गहराई से पता चलता है। 'म्यु' का अर्थ है 'न होना' (नथिंगनेस) तथा 'रा' का अर्थ है 'अपरिग्रह' यानी 'स्वामित्व-की-अनुपस्थिति'। यहां इस तरह 'म्युरा' का अर्थ हुआ 'कुछ न होना' अर्थात् मालिकी का विसर्जन, उसकी गैरहाजिरी। 'टोपिआ' ग्रीक शब्द है, जिसका अर्थ है 'जगह'। इस तरह कुल मिलाकर 'म्युरा' एक ऐसी जगह हुआ जहां आगामी युग की नयी समाज-रचना का सूत्रपात होगा।

सहज ही सवाल उठता है कि इस नयी समाज-रचना के आधार क्या होंगे?

आज हम देख रहे हैं कि यन्त्रोद्योग-प्रधान समाज-रचना सफल नहीं हुई है। चारों ओर प्रदूषण है, महामारियां हैं, भूखमरी और गरीबी है, कृत्रिम अभाव बने हुए हैं। पूंजीखोर-बाज़ारोन्मुख-सट्टेबाज़ अर्थतन्त्र ने विश्व-की-रीढ़ क्षत-विक्षत कर दी है। साम्यवादी अर्थतन्त्र परास्त हो चुका है। जो अर्थतन्त्र आज है, श्रीमती नंदिनी जोशी के अनुसार, उसके मुख्यत: छह आधार हैं। 1. एक-जैसा माल (स्टैंडर्डाइज़ेशन), 2. मनुष्य का एकांगी विकास (स्पेशियलाइज़ेशन), 3. प्रचण्ड व्यवस्था-तन्त्र (सिंक्रोनाइज़ेशन), 4. केन्द्रीकृत विकास (कंसेन्ट्रेशन), 5. अधिकतम कमाई का ध्येय (मेक्झेमाइज़ेशन), 6. आर्थिक तथा राजकीय सत्ताओं का केन्द्रीकरण (सेंट्रेलाइज़ेशन)। लेकिन जो ग्राम-तन्त्र क्षितिज पर आना चाहता है, उसके मुख्य दो आधार हैं- 1. स्वावलम्बन, 2. परोपकार या परस्परउपग्रह (एक-दूसरे की मदद अथवा एक-दूसरे के सथ जीवन्त हिस्सेदारी)।

उपर्युक्त अर्थतन्त्र के मुख्य लक्षण होंगे- उत्पादक और ग्राहक एक, मालिक-मजदूर एक, बचत करने वाला और खर्च करने वाला एक, मकान-मालिक और किरायेदार एक, प्रकृति के प्रति परिपूर्ण सम्मान अर्थात् उसे कमाई का साधन न मानना, न बनाना। इस तरह आने वाला मानव-समाज वह नहीं होगा जो आज मृग-मरीचिका की तरह हमारे जीवन में प्रवेश कर गया है, बल्कि वह 'म्युराटोपिअन अर्थतन्त्र' होगा जो दुनिया को अहिंसा और अपरिग्रह के जरिए अधिक सुंदर और बेहतर बनायेगा।

* सुंदर दुनिया माटे सुंदर संघर्ष (गुजराती), नंदिनी जोशी, उन्नति प्रकाशन, अहमदाबाद-380 006, 1993

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org